UNIVERSAL LIBRARY

OU_182275

UNIVERSAL LIBRARY

श्रीहरि:

मौर्य्य-विजय

श्रीसियारामशरण गुप्त

साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

२००५ वि०

मूल्य

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित

श्रीराम

भूमिका

मङ्गलमय भगवान की कृपा से हम भारतवासियों में कुछ कुछ स्वदेशानुराग की जागृति के चिह्न दिखाई देने लगे हैं। किन्तु हमारी वर्तमान दशा ऐसी नहीं है कि उस पर विशेष अभिमान किया जा सके। ऐसी दशा में अपने अतीत गौरव की ओर ध्यान होना स्वाभाविक ही है। यद्यपि हमारे लिए यह अत्यन्त दुःख और दुर्भाग्य की बात है कि हमें अपना महत्व दिखाने के लिए प्रायः अतीत की ओर देखना पड़े, वर्तमान पर हम सन्तोष न कर सकें, पर इसके अतिरिक्त और उपाय ही क्या है?

मेरी राय में तो इतना होना भी कम न समझना चाहिए कि किसी प्रकार हमारी मोह-निद्रा तो भंग हुई—हम यह तो समझने लगे कि हमारी पूर्वापर-अवस्था में कितना अन्तर हो गया—हम क्या थे और क्या हो गये हैं!

इससे क्या कुछ भी लाभ नहीं? कुछ लोगों की राय है कि "पुराने गीत गाने से क्या लाभ?" परन्तु मेरी तुच्छ सम्मति में उनसे लाभ है, और विशेष लाभ है। यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरव-पूर्ण हो और वह उस पर अभिमान करे तो उसका भविष्यत् भी गौरवपूर्ण हो सकता है। जो जिस बात पर अभिमान करता है—अथवा अभिमान करना सीखता है—वह एक न एक दिन उसके अनुकूल कार्य्य करने की चेष्टा भी कर सकता है। पतित जातियों को उनके उत्थान में उनके अतीत

गौरव का स्मरण बहुत बड़ा सहायक होता है। सच तो यह है कि आत्मविस्मृति ही अवनति का मूल कारण है और आत्मस्मृति ही उन्नति का। यदि आज हम अपने पूर्वजों के कृत्यों पर गर्व कर सकते हैं तो कौन नहीं कह सकता कि एक दिन—चाहे वह दिन दूर ही क्यों न हो—स्वयं भी उनका सा गौरव प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करके उनके सच्चे वंशज कहलाने की भी चेष्टा कर सकते हैं। ऐसा करना सर्वथा स्वाभाविक है, न करना ही अस्वाभाविक।

यह कहने की आवश्यकता ही नहीं कि प्राचीन भारत का इतिवृत्त बहुत कुछ अप्राप्त और लुप्त किंवा नष्ट भ्रष्ट होने पर भी अवशिष्ट जो कुछ मिलता है वह हमारे लिए विशेष गौरव की वस्तु है। उसकी बातों और घटनाओं के आधार पर अनेक प्रकार से अपार उन्नत साहित्य की सृष्टि की जा सकती है। सन्तोष का विषय है कि इस विषय में उद्योग हो रहा है। प्रस्तुत पद्य-पुस्तक भी एक ऐसी महत्वमयी प्राचीन ऐतिहासिक घटना के ऊपर लिखी गई है और इसके लिखने का कारण लेखक का अपने देश के प्रति प्रेम और आदर-भाव प्रदर्शित करना ही है। इसीमें उसकी कृतकृत्यता भी है। बस।

लेखक मेरा अनुज है, इससे मैं इस विषय में अधिक नहीं कहना चाहता। परन्तु आशा करता हूँ कि पाठक अपने प्राचीन गौरव के गान का विचार करके इसे अपनाने की कृपा करेंगे।

चिरगाँव (झाँसी)
चैत्र १९७१

मैथिलीशरण गुप्त

श्रीगणेशाय नमः

मौर्य्य-विजय

प्रथम सर्ग

भक्त-जनों के हृदय-कमल विकसित करने को,
अनुपम धर्मालोक भुवन भर में भरने को,
जिन प्रभु ने अवतार स्वयं ही धारण करके—
मारे निशिचर-वृन्द भार भूतल का हरके।
वे रावणारि रघुवंश-रवि, विश्वेश्वर, कल्याणमय,
दें इस जीवन-संग्राम में हमें अभय करके विजय॥

भारतभूपति चन्द्रगुप्त थे तेजोधारी,
शासन उनका प्रजावर्ग को था सुखकारी।
थे वे सद्गुणशील और बल-विक्रम वाले,
पद-मर्दित सब शत्रु उन्होंने थे कर डाले।
उनकी सु-राजधानी विहित पाटलिपुत्र मनोज्ञ थी;
जिसकी उपमा के अर्थ बस अमरपुरी ही योग्य थी॥

यद्यपि वे श्रीचन्द्रगुप्त जग में कहलाये,
प्रकट चन्द्र-से किन्तु उन्होंने गुण थे पाये।
सज्जनरूप चकोर समूहों को सुखदायी—
उनकी उज्वल कीर्त्ति चन्द्रिका-सी थी छाई।
निज रुचिर गुणों से वे सुधी सबको प्रिय थे सर्वथा;
होता है प्यारा कुमुदपति कुमुद-समूहों को यथा॥

सभी ओर उस समय यहाँ पर सुख ही सुख था;
सब प्रसन्न थे, नहीं किसीको कोई दुख था।
दुश्चरित्रता नहीं देखने में आती थी;
नहीं किसीकी वृत्ति अकार्यों पर जाती थी।
सब प्रेमसहित थे चाहते एक दूसरे को सदा;
सद्भाव-पद्म-परिपूर्ण थे सबके मानस सर्वदा॥

भारत-भाग्याकाश स्वच्छ था, सु-प्रसन्न था;
था सर्वत्र सुकाल, विपुल-धन और अन्न था।
फैला था आलोक ज्ञान-रूपी दिनकर का,
हटा रहा था अन्धकार जो भूतल भर का।
दुर्वृत्त-निशाचर देश में आते कहीं न दृष्टि थे;
सब दृश्य यहाँ के दिव्य थे, करते जो सुख-सृष्टि थे॥

धीर वीर उस समय सभी थे भारतवासी;
थे अब के-से नहीं दीन, जड़, रुग्ण, विलासी।
आर्योचित ही कार्य्य सभी कोई करते थे;
रणक्षेत्र में नहीं काल से भी डरते थे।
आलस्य, अनुद्यम आदि का पता न लगता था कहीं;
था देश समुन्नत विश्व में ऐसा कोई भी नहीं॥

सब कोई उस समय नियमपूर्वक रहते थे ;
कभी न कोई झूठ बात मुहँ से कहते थे ।
शासन का सब कार्य्य सदा होता था ऐसे—
स्वयं धर्म ही राज-काज करता हो जैसे ।
जब चन्द्र-तुल्य नृप चन्द्र ने यहाँ सुधा की वृष्टि की ,
तब सिल्यूकस ने राहु-सम उन पर अपनी दृष्टि की ॥

यूनानी सम्राट वीरवर सिल्यूकस था ;
अर्द्ध एशिया-खण्ड हो चुका उसके वश था ।
उसने रण में सदा विजय-गौरव था पाया ;
बड़े गर्व से भरत-भूमि पर वह चढ़ आया ।
उसके सैनिक निज कार्य्य मे शिक्षित थे, वर वीर थे ;
वे कभी नहीं संग्राम में देखे गये अधीर थे ॥

जीत दुर्ग दो-तीन लिये आते ही उसने ;
वहाँ जय-ध्वज उड़ा दिये आते ही उसने ।
करके भी उद्योग वहाँ के शासक सारे—
रोक न उसको सके, परिश्रम करके हारे ।
क्या प्रबल पवन के वेग को सह सकते हैं तरु-निकर ?
उसके सहने की शक्ति तो रखता है बस शैलवर ॥

सिल्यूकस इस समय हृदय में चिन्ता धारे ,
धीरे धीरे घूम रहा है सिन्धु - किनारे ।
सुन पड़ता है नहीं उसे जल का वह कलकल ;
है उसका मन ध्यानमग्न, एकाग्र, अचञ्चल ।
उसकी विशाल सेना वहीं डेरा डाले है पड़ी ;
बस गई वहाँ सहसा नई वीर-पुरी मानों बड़ी ॥

पूर्ण चन्द्र है उदित सुनील नभोमण्डल में ;
चारु चन्द्रिका छिटक रही है वसुधातल में।
विहग-गणों का बन्द हुआ है आना-जाना ;
नहीं रुका है किन्तु पिकों का मधु बरसाना।
चल कर सुरभित शीतल पवन है सबका श्रम हर रही ;
देकर सुगन्धि सुखदायिनी, मन को मोहित कर रही ॥

कल-कल करता हुआ सिन्धुनद बहता जाता ;
रजतकान्तिमय विमल सलिल मन को ललचाता।
उसमें निज प्रतिविम्ब-व्याज से आकर तारे—
क्रीड़ा-सी कर रहे, विपुल सुन्दरता धारे।
बालू फैली तट-प्रान्त में जो दृग्गति-पर्यन्त है,
वह विधु-किरणों से चमक कर हुई रुचिर अत्यन्त है ॥

नीले नीले दूर देख पड़ते जो भूधर—
वे दृष्टि-प्राकार-तुल्य लगते हैं सुन्दर।
पृथ्वी मानों वसन चन्द्रिका का है पहने ;
तारागण ही बने हुए हैं उसके गहने।
ये दृश्य देख कर ग्रीक सब आमोदित हैं हो रहे,
निज मातृ-भूमि-सौन्दर्य का गर्व सभी हैं खो रहे ॥

किन्तु ध्यान इस ओर नहीं है सिल्यूकस का,
किसी दूसरी ओर इस समय है मन उसका।
उसका आनन हर्ष-भाव है कभी दिखाता ;
फिर चिन्ता में कभी लीन-सा वह हो जाता।
जानें किस कारण फिर कभी, बन जाता गम्भीर वह ;
सुनिए, अब, अपने आप ही, क्या कहता है वीर वह—

"यह सोने का देश जीत कर क्या हम रण में—
ग्रीस-जयध्वज उड़ा सकेंगे विश्व-भुवन में ?
आते ही दो-तीन जगह तो है जय पाई,
इतने से ही किन्तु हमारी नहीं बड़ाई।
जब तक यह विस्तृत देश हम सभी जीत लेंगे नहीं,
तब तक हम अपने चित्त को शान्ति कभी देंगे नहीं॥

"या तो आते नहीं, यहाँ आये तो जीतें;
कहीं हमारे ये अमूल्य दिन व्यर्थ न बीतें।
यद्यपि शिक्षित, सुदृढ़ सैन्य है पास हमारे—
जिसके सम्मुख सभी शत्रु अब तक हैं हारे—
फिर भी अति दुष्कर कार्य्य है जय करना इस देश का;
यदि जय पावें तो फिर हमें शोच नहीं कुछ क्लेश का॥

"धीर-वीर ये भारतीय होते हैं कैसे,
किसी देश के मनुज न देखे इनके जैसे।
क्या ही उज्वल, गेय चरित इनके होते हैं;
ग्रीकों का भी गर्व कार्य्य इनके खोते हैं।
देखें इस भीषण युद्ध का होता क्या परिणाम है।
उस चन्द्रगुप्त से ही हमें करना अब संग्राम है॥

"ग्रीस-जय-ध्वज यहाँ उड़ाने हम आये हैं,
भारतीय बल-गर्व छुड़ाने हम आये हैं।
ग्रीस-यशोविस्तार और भी अधिक करें हम;
देखे सब संसार हमारा अद्भुत विक्रम।"
ऐसे ही भावों में वहाँ वह अपने मन को दिये,
निज शिविर-ओर जाने लगा धीर-भाव धारण किये॥

चन्द्रगुप्त की ओर चलो अब हे वाचक-वर,
देखें, क्या हो रहा कार्य्य इस समय वहाँ पर।
शिक्षित सेना साथ लिये, मन-मोद बढ़ाये;
तक्षशिला में आज भारतेश्वर हैं आये।
उनकी सेना के बहु शिविर निकट नगर के हैं खड़े;
कर रुचिमय कार्य वहाँ सभी मुदित हो रहे हैं बड़े॥
चहल-पहल मच रही वहाँ सब ओर बड़ी है,
सभी ओर आनन्द-मोद की धूम पड़ी है।
हाथी-घोड़ों और सैनिकों का रव मिल कर,
कँपा रहा है वार वार आकाश वहाँ पर।
सर्वत्र अतुल उल्लास ही, सेना में है छा रहा;
कोई कोई सैनिक यहाँ, इस प्रकार है गा रहा—

गीत

पुण्यभूमि यह हमें सर्वदा है सुखकारी;
माता के सम मातृभूमि है यही हमारी।
हमको ही क्या, सभी जगत को है यह प्यारी;
इतनी गुरुता और कहीं क्या गई निहारी?
यह वसुधा सर्वोत्कृष्ट है क्यों न कहें फिर हम यही—
जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारतमही॥
"अब तक जो कुछ विश्व बीच हमने पाया है,
वह इस प्यारी पुण्य-भूमि की ही माया है।
हममें ओत-प्रोत प्रेम इसका छाया है;
हमने यह सब भाँति जगत को बतलाया है।
हम इसके सुत, हमको निरख कह उठते हैं सब यही—
जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारतमही॥

"इसी भूमि पर राम-कृष्ण ने जन्म लिया है।
ऋषि मुनियों ने प्रथम ज्ञान-विस्तार किया है।
है क्या कोई देश यहाँ से जो न जिया है?
सदुपदेश - पीयूष सभीने यहाँ पिया है।
नर क्या, इसको अवलोक कर कहते हैं सुर भी यही—
जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारतमही॥

"हे! हम सबकी मातृभूमि, भयहारिणि माता!
बस तेरा ही रूप हमें जी से है भाता।
तेरा-सा सौन्दर्य्य सृष्टि में दृष्टि न आता;
तेरी शोभा देख स्वर्ग भी है सकुचाता।
हम जिधर कान देते उधर सुन पड़ता हमको यही—
जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारतमही॥

"धरणी, सागर, शैल जहाँ तक गये निहारे,
हैं तेरे ही यशोगान से गुञ्जित सारे।
सभी देश हैं अतुलनीय तेरा ऋण धारे,
कीर्ति-धवल कर गये तुझे हैं पितर हमारे।
सब सुनें, गिरा यह गूँज कर है अनन्त में छा रही;—
जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारतमही"॥

यह पुनीत सङ्गीत गूँज कर गगन-स्थल में,
है वर्षण कर रहा अमृत-सा अवनीतल में।
दीख रहे हैं साज-बाज सब ओर निराले;
मानों सब हो रहे हर्ष से हैं मतवाले।
बैठे हैं अपने शिविर में, चन्द्रगुप्त मन्त्री-सहित;
कर रहे वहाँ वे मन्त्रणा ग्रीकों के अवरोध-हित॥

बोले नृप—"गुरुदेव, जयश्री हम पावेंगे,
विफल-मनोरथ शत्रु शीघ्र ही हो जावेंगे।
समझे इससे यदपि ग्रीक भी हैं बलधारी,
पर आर्यों की आत्म-शक्ति अब भी है भारी।
यद्यपि भीष्मार्जुन के सदृश वीर यहाँ अब हैं नहीं?
पर उनके ही सन्तान क्या विश्रुत हम सब हैं नहीं?"

बोले तब चाणक्य—"यदपि कुछ हमें न भय है,
अति अजेय यह भरत-भूमि अब भी निश्चय है।
किन्तु शत्रु को तुच्छ समझ कर अपने मन में,
अनवधान हे वत्स! कभी मत रहना रण में।
लघु से लघुतम शत्रु को तुच्छ समझना भूल है;
ग्रीकों पर तो सन्तत रही जय-लक्ष्मी अनुकूल है॥"

चले गये चाणक्य शयन करने यों कह कर,
कुछ विचारने लगे भूप तब नीरव रह कर।
जरा देर में उन्हें नींद ने जब आ घेरा—
उसने उनका ध्यान सभी बातों से फेरा।
जाकर तदनन्तर सेज पर वे सुख से सोने लगे।
पाकर सुशान्ति हृद्धाम में क्लान्ति सभी खोने लगे॥

———

द्वितीय सर्ग

ऊषा का आगमन हो रहा था सुखकारी,
　　　　था बह रहा सुगन्ध मन्द मारुत श्रमहारी।
एक एक कर लुप्त हो चुके थे सब तारे;
　　　　पाते प्रभुता तिमिर-मध्य ही लघुजन सारे,
कोकिल कोरादिक बिहग-वर सु-स्वर मे थे गा उठे,
अथवा सबको करके सजग श्रवण-सुधा बरसा उठे॥

जाग कर नृपवर चन्द्रगुप्त की सेना सारी,
　　　　करने लगी तुरन्त युद्ध के हित तैयारी।
जरा देर में वीर हो गये सज्जित सारे;
　　　　अस्त्र-शस्त्र-संयुक्त हृदय में दृढ़ता धारे।
सब शूरों में उत्साह के भाव दृष्टि आने लगे;
बज उठा वहाँ रण-वाद्य फिर सैनिक-गण गाने लगे॥

गीत

हम सैनिक हैं, हमें जगत में किसका डर है ?
रणक्षेत्र ही सदा हमारा प्यारा घर है।
हृदय हमारा विपुल वीरता का आकर है ;
आँगन-सा है हमें भुवन, प्रकटित सब पर है।
वह कौन कार्य्य है हम जिसे कर न सकें पूरा कभी ?
निज भारतीय बल-वीर्य्य का आओ, परिचय दें अभी ॥
"है पृथ्वी में कौन वस्तु वह जिसके द्वारा—
हो सकता गति-रोध तनिक भी कभी हमारा ?
दुर्गम गिरि, वन, वह्नि, प्रबल पानी की धारा—
सभी सुगम हैं हमें, जानता है जग सारा !
वह कौन शत्रु है हम जिसे, जीत न सकते हों कभी ?
निज भारतीय बल-वीर्य्य का आओ, परिचय दें अभी ॥
"प्राण-दान कर हमीं विजय की ध्वजा उड़ाते ;
मातृ - भूमि को विपज्जाल से हमीं छुड़ाते।
अनुत्साह, आलस्य हमारे पास न आते ;
हमें मृत्यु के बाद हमारे गीत जिलाते।
हम पश्चात्पद संग्राम से हो सकते हैं क्या कभी ?
निज भारतीय बल-वीर्य्य का आओ, परिचय दें अभी ॥
"भरा हमीं में भीम और अर्जुन का बल है ;
कम्पित हमसे कहाँ नहीं होता रिपु-दल है ?
वीर-प्रण सब काल हमारा अचल, अटल है,
राम-कृष्ण का अभय-दान हम पर निश्चल है।
ये यवन हमारे सामने टिक सकते हैं क्या कभी ?
निज भारतीय बल-वीर्य्य का आओ, परिचय दें अभी ॥

"आओ वीरो ! आज देश की कीर्ति बढ़ा दें ;
सबके सम्मुख मातृ-भूमि को शीश चढ़ा दें ।
शत्रुजनों को मार यहाँ से अभी हटा दें ;
उनका घोर घमण्ड सदा के लिए घटा दें ।
संसार देख ले फिर हमें तुच्छ नहीं हैं हम कभी ;
निज भारतीय बल-वीर्य्य का आओ, परिचय दें अभी ॥

उन वीरों के वीर-गान की वह स्वर-धारा—
प्लावित करने लगी शीघ्र दिङ्मण्डल सारा ।
उन शूरों का तेज लगा अति बर्द्धित होने,
त्याग दिया तनु-मोह देश के लिए उन्होंने ।
करके मन में सङ्कल्प दृढ़ रिपु-संहारण के लिए,
हो गये मौर्य्य-सम्राट भी प्रस्तुत तब रण के लिए ॥

थे मानों प्रत्यक्ष इन्द्र वे अवनीतल के ;
थे उनके भुज यशःस्तम्भ से अतुलित बल के ।
थी विशाल अत्यन्त सुदृढ़तर उनकी छाती ;
उज्वल आँखें दीप्ति सर्वदा थीं बरसाती ।
था भव्य शीश पर मणि-जटित मुकुट सुशोभित हो रहा,
जो रवि-किरणों से और भी था आलोकित हो रहा ॥

कवचावृत था कवच-सदृश ही दृढ़ तन उनका ;
दमक रहा था दिव्य दीप्ति से आनन उनका ।
साहस से था भरा हुआ अविचल मन उनका,
था स्वदेश - रक्षार्थ समर्पित जीवन उनका ।
होकर फिर अश्वारूढ़ वे धनुर्बाण कर में लिये,
आ पहुँचे अपनी सैन्य में वीर-वेश धारण किये ॥

"जयति मौर्य्य-सम्राट भारतेश्वर की जय जय"—
सब सैनिक यों सिंहनाद कर उठे हर्षमय।
तब नृप ने यह कहा जोर से हाथ उठा कर,
"हैं समर्थ हम आज तुम्हारा ही बल पाकर।
शूरो! भारत-साम्राज्य की लाज तुम्हारे हाथ है;
है तुम्हें धर्म्म का ध्यान तो विजय सर्वदा साथ है॥"

बोल उठे सब शूरवीर यों उच्चस्वर से—
"छोड़ेंगे हम नहीं धर्म्म प्रणों के डर से।
ग्रीकों का बल-गर्व छुड़ा देंगे हम सारा;
भरत के हम और हमारा भारत प्यारा।"
फिर सैनिक-गण आगे बढ़े नृप-निदेश से शीघ्र ही,
तब कम्पित-सी होने लगी उन सबकी गति से मही॥

मौर्य्य-पताका उच्च उड़ाते हुए गगन में,
सुन कर चारण-गीत मत्त होकर निज मन में,
पहुँच गये वे वीर-वृन्द नृप-सहित वहाँ पर,
डटी हुई थी शत्रु सैन्य विस्तीर्ण जहाँ पर।
धारण करके उत्साह रिपु वहाँ दूर तक थे अड़े,
आर्य्यों से लड़ने के लिए गर्व सहित वे थे खड़े॥

पहुँच गये उस युद्ध-भूमि में ज्यों ही नृपवर,
होने लगा नितान्त भयङ्कर नाद वहाँ पर।
सभी ओर पड़ गई एक हलचल-सी भारी,
सबने शस्त्र सँभाल युद्ध की की तैयारी।
तब चन्द्रगुप्त घन-घोष से वीर वचन कहने लगे—
सब सेना में उत्साह के निर्झर-से बहने लगे॥

"वीरो! सच्चा युद्ध वैरियों को सिखलादो;
आर्य्यों का बल-वीर्य्य आज जग को दिखलादो।
अपनी कीर्त्ति-ध्वजा आज सब ओर उड़ादो;
मातृ-भूमि को विपज्जाल से शीघ्र छुड़ादो।
खाली करदो रण-भूमि यह शत्रुजनों को मार कर;
जो बचें, भगें वे ग्रीस को, लज्जित होकर, हार कर॥

देखो, तुम हो आर्य्य वीर, यह भुला न देना;
अपनी सारी कीर्त्ति सदा को सुला न देना;
आर्य्यों की सन्तान श्रेष्ठ हैं हम बलधारी—
जान जाय यह बात आज यह पृथ्वी सारी।
जो कार्य्य तुम्हारे योग्य है करके दिखलादो अभी;
ये म्लेच्छ भूलकर भी इधर मन न करें जिसमें कभी॥"

नृप के यों उत्साहपूर्ण सुन वचन मनोहर,
गरज उठे सब शूर मन्त्र-मोहित-से होकर।
"चन्द्रगुप्त की विजय"—घोर रव से कह करके,
लड़ने लगे सरोष हृदय में साहस भरके।
तज प्राण-मोह सबने वहाँ ठान लिया मन में यही—
मारेंगे या मर जायँगे आज यहाँ हम आप ही॥

आर्यों का आक्रमण यदपि था अति ही दुस्सह;
किन्तु सहन कर लिया किसी विधि रिपुओं ने वह
वे भी करने लगे प्रकट अपना बल-विक्रम;
साहस या वीरत्व नहीं उनमें भी था कम।
शस्त्रों की वर्षा हो उठी द्रुततर दोनों ओर से;
वर वीर मुदित होने लगे युद्ध-ध्वनि घनघोर से॥

भारतीय भट महोत्साह से उत्साहित थे;
लेख चुके निज प्राण तुच्छ वे जय के हित थे।
अरि-दल के आघात निवारण कर कौशल से;
विस्मित करने लगे उसे वे निज-भुज-बल से।
उनके धनुषों से तीक्ष्ण शर लगे बरसने नीर-से;
रिपुओं के संहारार्थ वे होने लगे अधीर-से॥

जरा देर में हुई शत्रु-सेना शिथिलित-सी।
पीछे वह हट चली युद्ध से हो विचलित-सी।
घबराहट सब ओर पड़ गई उसमें भारी,
तितर बितर तत्काल वहाँ वह गई निहारी।
आर्यों को काल-समान ही देखा उसने भीति से;
आतङ्कपूर्ण वह हो गई भारतीय रण-रीति से॥

सिल्यूकस यह घोर दृश्य अवलोकन करके,
सेना को उत्साह दे उठा उच्चस्वर से।
सुन उसका गम्भीर घोष मन में आता था—
गर्जन पूर्वक जलद अमृत-सा बरसाता था।
बोला वह झट—"हे भाइयो! यह तुम क्या करने लगे?
होकर दिग्विजयी वीर तुम आर्यों से डरने लगे!

"बता रहे हैं भीरु तुम्हें ये शत्रु तुम्हारे,
क्योंकि युद्ध से भाग रहे तुम भय के मारे।
होकर कातर और भीत प्राणों के डर से,
पीछे हटते भला वीर भी कहीं समर से?
इस तरह तुम्हारी कीर्ति सब मिट्टी में मिल जायगी,
तब क्या न घोर अनुताप की ज्वाला तुम्हें जलायगी?

"अभी समय है, अभी काम कुछ कर दिखलाओ ;
भारत भर में विजय-कीर्ति अपनी फैलाओ।
विश्व-विदित तुम वही वीरवर हो यूनानी,
दीख पड़ा है नहीं कहीं भी जिनका सानी।
क्या तुच्छ प्राण के ही लिए तुमको डरना योग्य है ?
तुमको अपना वीरत्व वह प्रकटित करना योग्य है॥

"पदमर्दित हैं शत्रु किये तुमने कितने ही ;
प्रबल देश भी जीत लिये तुमने कितने ही।
क्या वह गौरव सभी आज तुमको खोना है ?
अपमानित क्या आज हिन्दुओं से होना है।
जो बात नहीं यह, तो अभी धारण करके धीरता॥
कर दलित शत्रु-दल विश्व को बतला दो निज वीरता॥

"रिपुओं का वीरत्व देखकर मत घबराओ,
ग्रीक जाति के अतुल वीर्य्य पर ध्यान लगाओ।
किसे नहीं है ज्ञात अलौकिक शक्ति तुम्हारी ?
तुम ही तो कर चुके प्रकम्पित पृथ्वी सारी।
हारो ही अथवा क्यों न तुम किन्तु याद रखना सदा—
है वीरों को अविजय उचित मरने पर ही सर्वदा॥

"हम सजीव हैं—हमें कौन बतलाता मृत है ?
हम में ओतप्रोत भरा वह वीर-व्रत है।
वीरवरो! है आज यहाँ पर यही दिखाना—
खेल नहीं है रणक्षेत्र से हमें हटाना।
है समय सामने कार्य का, पालन करो स्वधर्म का,
अब भेदन कर दो शीघ्र ही शत्रुजनों के मर्म्म का॥"

ग्रीकों ने ये वचन जहाँ उसके सुन पाये,
उनके हटते हुए पैर आगे बढ़ आये।
करने लगे सवेग शीघ्र भीषण रण वे फिर,
हिन्दू सैनिक हुए न पर इसमें कुछ अस्थिर।
आगे बढ़ कर सोत्साह वे भीम युद्ध करने लगे;
निज सेना में नृप और भी साहस यों भरने लगे॥

"हे वीरो! अब जरा और आगे बढ़ आओ।
रख रिपु-दल पर पैर यशोगिरि पर चढ़ जाओ।
जो न यहाँ से पीठ दिखा कर ये भग जावें,
तो फिर ये रण-बीच न जीवित रहने पावें।
अब देश और निज जाति की हाथ तुम्हारे लाज है;
जिससे न नष्ट वह हो वही तुमको करना आज है॥"

सुन कर नृप के वचन शीघ्र ही सेना सारी,
प्रकटित करने लगी और रण-कौशल भारी।
सब वीरों का तेज और बढ़ गया अनन्तर—
बढ़ जाती है वह्नि-ज्योति ज्यों आहुति पाकर।
वे शत्रु-सैन्य पर टूट कर उसे नष्ट करने लगे;
होकर कृतार्थ बहु वीर-गण उस रण में मरने लगे॥

जिसके सम्मुख दृष्टि ग्रीक जो कोई आया,
उसने उसको वहीं सदा के लिए सुलाया।
पीछे अपना पैर किसीने नहीं हटाया,
शत्रु जनों का वीर्य उन्होंने सभी घटाया।
निज प्राण-मोह भी त्याग कर जय-प्राप्ति-हित हर्ष से,
फिर 'जय जय' वे करने लगे अपने इस उत्कर्ष से॥

महा धीरता-पूर्ण तेज से थे वे छाये;
आर्यों जैसे कार्य्य उन्होंने कर दिखलाये।
तत्क्षण गर्वित शत्रुजनों के होश उड़ाये,
कितने ही अरि-वृन्द उन्होंने मार गिराये।
परिपूर्ण दिशाएँ हो गईं शस्त्रों की झंकार से;
रिपु कट कट कर गिरने लगे बाणों की बौछार से॥

शस्त्र चमकने लगे भयङ्कर समरस्थल में;
मरने लगे अनेक वीर गिर कर पल पल में।
उड़ उड़ कर बहु धूल व्योम-मण्डल में छाई—
इस प्रकार हो उठी वहाँ पर घोर लड़ाई।
वीरों के हृदयों में विपुल बिजली-सी भरने लगी;
जो उन्हें शत्रु-संहार-हित उत्तेजित करने लगी॥

कहीं किसीकी टूक टूक हो गई सिरोही;
खो बैठे निज अश्व अनेकों अश्वारोही।
हाथ पैर भी छिन्न होगये कितनों ही के;
शीश धड़ों से भिन्न होगये कितनों ही के।
बस, हत-आहत ही वीर थे आते दृष्टि जहाँ तहाँ;
थी ताण्डव-सा करने लगी भीषण मृत्यु स्वयं वहाँ॥

समझी सबने कीर्ति वहाँ प्राणों से प्यारी;
थे रिपु-संहारार्थ सभी उत्साहित भारी!
हुए वहाँ रुधिराक्त बहुत से समर-स्नेही;
होते थे प्रत्यक्ष ज्ञात वे पावक-से ही।
सब वीरों में वीरत्व के भाव भरे भरपूर थे;
उन्मत्त-सदृश ही ज्ञात सब होते सैनिक शूर थे॥

बहने लगी सवेग वहाँ शोणित की धारा ;
        लाशों से पट गया शीघ्र युद्ध-स्थल सारा।
रख रख उन पर पैर वेग से बढ़ कर आगे ;
        थे सब रण कर रहे हृदय से भय को त्यागे।
उस युद्ध-यज्ञ की अग्नि में बहुत वीर बलि होगये ;
बहु सैनिक शूरों की तरह वहाँ सदा को सोगये॥

अहा ! शीघ्र बज उठी हिन्दुओं की जय-भेरी ;
        वैरी अस्तव्यस्त हो गये, लगी न देरी।
मृग सिंहों को देख भाग उठते हैं जैसे—
        पीठ दिखाते हुए दृष्टि आये वे वैसे।
तब नृप वर के आदेश से आर्य्य वीर तत्काल ही—
उनके पीछे धावित हुए, कम्पित-सी करके मही॥

——

तृतीय सर्ग

ग्रीक-शिविर के बीच एक सुन्दरी अकेली,
बैठी थी निज गण्ड - देश पर दिये हथेली।
चन्द्रकला के सदृश वहाँ पर किये उजाला,
छवि को ही कर रही विलज्जित थी वह बाला।
थी सुता ग्रीक-सम्राट की एथेना - नाम्नी वही,
निज भावों के साम्राज्य में विचरण थी वह कर रही।

अहो! पिता इस रङ्ग-भूमि पर रक्त बहा कर,
फैला रहे अशान्ति हाय! किसलिए घोर तर।
अहा! ग्रीस - सी छटा यहीं पर मैंने पाई,
है यह सुन्दर देश नहीं किसको सुखदायी?
है जैसी सुन्दरता यहाँ वैसी ही सुख - शान्ति है;
इस दिव्य देश में आप ही पाता मन विश्रान्ति है॥

"गये आज हैं पिता भयङ्कर समर-स्थल में ;
इसीलिए है व्यग्र चित्त मेरा पल पल में।
कितने ही जन आज सदा को सो जावेंगे !
कितने ही नर-रत्न मही के खो जावेंगे !
हा ! आज अनेकों नारियाँ निरवलम्ब हो जायँगी ;
इस जगद्राज्य में भीमता क्या वे नहीं बढ़ायँगी ?

"रणक्षेत्र से लौट आयँगे पिता आज जब ,
विरत युद्ध से उन्हें करूँगी मैं निश्चय तब।
बेटी का अनुरोध नहीं क्या वे मानेंगे ?
रक्त-पान ही वीर-धर्म अपना जानेंगे !
क्या ऐसा भीषण काण्ड भी हो सकता सत्कर्म है ?
इस घोर युद्ध का रोकना निश्चय मेरा धर्म्म है ॥"

इन भावों में उलझ रही थी जब वह बाला ,
बहु शब्दों ने उसे अचानक चौंका डाला।
त्वरित खड़ी हो गई दौड़ कर बाहर आई ,
कोलाहल की ओर दृष्टि उसने दौड़ाई।
तब देखा उसने दुःख से ग्रीक हार कर आ रहे ;
उनके मुख ही उनको अजय हैं सविशेष बता रहे ॥

प्रतिशोधन के भाव अनेकों मन में भरके ,
ओंठ काटता हुआ, भाल को कुञ्चित करके।
शीघ्र बढ़ाता हुआ वेग से निज तुरंग वर ,
सिल्यूकस भी उसे दिखाई दिया वहाँ पर।
वह चला गया झट शिविर में हय से कूद उसी समय ,
अति व्यग्र हो रहा था निरख मौर्य्य महीपत की विजय ॥

एथेना ने 'पिता, पिता' कह उसे पुकारा,
पर विरक्ति के साथ पिता ने उसे निहारा।
सहम गई वह, खड़ी रही निज शीश झुकाये;
उसके सुन्दर नेत्र आँसुओं से भर आये।
सिल्यूकस यह अवलोक कर और विरक्त न रह सका।
लख बेटी का मुख-भाव वह मौनासक्त न रह सका॥

"क्या है बेटी? क्षमा मुझे तू सम्प्रति करना;
था मैं अन्यमनस्क दोष मत मन में धरना।"
"पिता, तुम्हारा कौन दोष?" एथेना बोली—
कर्णाञ्जलि में अहा! सुधा-सी उसने घोली।
मैं यह कहना थी चाहती युद्ध बन्द अब कीजिए,
नृप चन्द्रगुप्त से सन्धि ही उचित समझ कर लीजिए।"

एथेना को अभी और भी था कुछ कहना,
कह न सकी वह, जँचा उसे समुचित चुप रहना।
सिल्यूकस का सचिव वहाँ इतने में आया;
अत्यावश्यक समाचार जो था वह लाया—
'होने वाला है ग्रीस में विप्लव एक तुरन्त ही,
सेनापतियों में युद्ध की तैयारी है हो रही॥"

ग्रीस राज्य का हाल सचिव द्वारा यह सुनकर;
चिन्ताकुल हो गया चित्त में वह योद्धावर।
जरा देर तक रही वहाँ नीरवता छाई;
फिर अमात्य से यही राय अपनी प्रकटाई—
"मैत्री भारत-सम्राट से अब कर लेना चाहिए;
प्रस्थान ग्रीस को शीघ्र ही फिर कर देना चाहिए॥"

एथेना भी बोल उठी प्रकटित कर यह मत—
　　"सब प्रकार हूँ सचिव-कथन से मैं भी सहमत।"
इतने ही में हुआ बड़ा कोलाहल बाहर;
　　सुनने लगे तुरन्त उसे वे ध्यान लगा कर।
कुछ ग्रीक सैनिकों ने वहाँ तत्क्षण ही आकर कहा—
"अपनी सेना लेकर यहीं चन्द्रगुप्त है आ रहा॥"

आ घेरी फिर ग्रीक-सैन्य आर्यों ने सारी;
　　हलचल-सी मच गई वहाँ पर इससे भारी।
सिल्यूकस ने किया सचिव से परामर्श कुछ,
　　जरा देर को भी न हुआ पर वह विमर्ष कुछ।
तत्काल कई सैनिक लिए चन्द्रगुप्त आये वहीं;
थीं विजय तेज की ज्योतियाँ जिनके मुख पर जग रहीं॥

तब कराल करवाल हाथ में लेकर सत्वर,
　　सिल्यूकस होगया खड़ा उत्तेजित होकर!
बोला वह—"हे चन्द्रगुप्त! आगे बढ़ आओ;
　　बस, अन्तिम बल-वीर्य्य मुझे अपना दिखलाओ।
देखूँ, तुम कैसे वीर हो, कितना बल तुममें भरा,
है रखती कितना तेज यह भारतवर्ष-वसुन्धरा॥"

चन्द्रगुप्त ने किन्तु हँस दिया मधुरस्वर से;
　　छीन लिया फिर खड्ग झपट कर उसके कर से।
देव - सुन्दरी - सदृश लिये शोभा मनभाई,
　　एथेना भी उन्हें उसी क्षण दी दिखलाई।
उस बाला का आलोकमय अनुपम रूप निहार के,
वे मुग्ध हो गये चित्त में अपनी दशा विसार के॥

नृपवर ने दो एक बार उसको अवलोका ;
किन्तु सँभल कर शीघ्र उन्होंने मन को रोका।
सिल्यूकस को ओर देख कर कहा उन्होंने—
"आये थे क्या आप यहाँ पर विजयी होने ?
क्या आप जानते थे नहीं भारतवर्ष - प्रताप को ?
है भारत भारत ही सदा, ज्ञात न था क्या आपको ?

"वन्दी हैं सम्राट आप इस समय हमारे,
क्षमा किये पर दोष आपके हमने सारे।"
सिल्यूकस तब बोल उठा यों क्रोध - स्वर से—
"क्षमा नहीं है इष्ट मुझे मरने के डर से।
मैं ग्रीक वीर हूँ, क्या मुझे मृत्यु डरा सकती कहीं ?
करलो जो कुछ तुम कर सको, दया चाहता मैं नहीं ॥"

करके उत्तर श्रवण भूप यों सिल्यूकस से,
हुए न कुछ भी क्रुद्ध, और बोले यों उससे—
"तेजस्वी हैं आप, वीर भी हैं निश्चय ही ;
करते हैं हम मुक्त आपको इसी समय ही।
भारतवासी होते नहीं औरों - जैसे क्रूर हैं,
सम्मान पराजित शत्रु का करते हम भर पूर हैं ॥"

एथेना को एक बार फिर भी निहार के,
भूप वहाँ से चले गये गाम्भीर्य्य धार के।
हाँ, वे लेते गये एक आशा - बन्धन को,
छोड़ गये वे किन्तु वहीं पर अपने मन को।
देखा की मूर्ति - समान सब एथेना व्यापार यह ;
ले एक दीर्घ निश्वास फिर सँभली किसी प्रकार वह ॥

उस घटना को हुए, कई दिन आज हो गये ;
    ग्रीक शिविर के हर्ष - भाव सम्पूर्ण सो गये।
वह उल्लासच्छटा वहाँ अब दृष्टि न आती,
    जो अपूर्व आह्लाद - हृदय में थी सरसाती।
उस समय भयङ्कर रात थी, व्याप्त तिमिर सब ओर था ;
ज्यों ग्रीक-सैन्य में छा रहा निरुत्साह घनघोर था ॥

रम्य वहाँ का विपिन और नभ के वे तारे
    लगते थे उस समय भयङ्कर ही - से सारे।
सब बातें अनुरूप समय के ही हो जातीं—
    कुसमय में क्या भली वस्तुएँ भी हैं भातीं !
पर इन बातों को छोड़ कर वाचकवृन्द, चलो वहाँ,
सिल्यूकस अपने शिविर में अब भी जाग रहा जहाँ ॥

इधर उधर वह घूम रहा है अस्थिर जैसे—
    उसके मन में घूम रहीं बहु बातें वैसे।
यद्यपि मन्द सुगन्ध पवन से शीतल तन है,
    चिन्तानल से किन्तु जल रहा उसका मन है।
बहु घात और प्रतिघात वह है भावों का सह रहा ;
अब सुनो ध्यान देकर जरा जो कुछ है वह कह रहा ॥

"किस कुसमय में ! हाय यहाँ पर थे हम आये ;
    हैं कितने आघात यहाँ पर हमने पाये !
इसका बदला हाय ! नहीं हम ले सकते हैं ;
    रिपुओं का फल नहीं गर्व का दे सकते हैं।
क्या यह कम दुख की बात है क्यों न हृदय इससे जले ?
स्मरणीय, विपक्षी की विजय, क्यों न हमें मन में खले ?

"वह साहसी स्वभाव कहाँ है आज हमारा ;
हो सकता कुछ यत्न विजय का उसके द्वारा ।
वीर - गर्व भी आज नहीं देता दिखलाई ;
क्या मन ने भी हार हाय ! रिपुओं से खाई !
यद्यपि तुम लोगों ने यहाँ हमें पराजित है किया,
फिर भी मन में उठती नहीं क्यों प्रतिशोधन की क्रिया ?

"समुचित ही है क्रोध जो न उन पर आता है ;
ऐसा भी उपकार कहीं भूला जाता है ?
छी ! छी ! फिर भी वही अवलता मन में आई ;
की वैरी ने भला कौन-सी बड़ी भलाई ।
नृप चन्द्र सुता को चाहता—इसीलिए हम मुक्त हैं ।
पर क्या अरि इस सम्बन्ध के हो सकते उपयुक्त हैं ?

"किन्तु शत्रुता चन्द्रगुप्त ने क्या दिखलाई ?
की है उस पर स्वयं हमीं ने प्रथम चढ़ाई ।
है वह वीर-वरिष्ठ और गुणशाली अनुपम ;
तो फिर उससे क्यों न सुता का व्याह करें हम ?
एथेना भी है चाहती उसे चित्त से सर्वथा ;
क्या पहुँचा सकते हैं कभी हम उसके मन को व्यथा ?

"ठीक रहा तो यही, व्यर्थ क्यों वैर बढ़ावें ;
बस यह करके लौट देश को अब हम जावें ।
मचा रहे हैं शत्रु वहाँ भी हलचल भारी ;
है उनके दमनार्थ हमें करनी तैयारी ।
समयानुसार ही कार्य्य अब हमको करना है उचित ;
पड़ और बखेड़ों में यहाँ करें व्यर्थ ही क्यों अहित ?

बड़ी रात तक रहा सोचता इसी भाँति वह ;
　　उठ कर सबने सुना सबेरे समाचार यह—
"चन्द्रगुप्त से सन्धि ग्रीक-सम्राट करेंगे ;
　　एथेना को जयी मौर्य्य-सम्राट वरेंगे।"
तब उत्सव बहु होने लगे ग्रीक-शिविर में सब कहीं।
वे हार्दिक थे या ऊपरी यह हम कह सकते नहीं॥
फिर ऐथेना नियत समय पर नृप ने पाई ;
　　मौर्य्य-विजय प्रत्यक्ष मिली मानों मन-भाई।
यही नहीं, कान्धार, हिरातादिक प्रदेश भी,
　　मिले उन्हें उपहार-रूप त्यों यश अशेष भी।
रिपु-हृद्धामों में गर्व का जला दीप जो था नया,
वह भारतीय बल-वायु का झोंका खाकर बुझ गया॥
तज कर अपने गर्व-भाव, होकर आरत-से,
　　लौट रहे हैं आज ग्रीक-योद्धा भारत से।
किन्तु आर्य्यगण महोत्साह से जय जय करके,
　　उल्लसित हैं महामोद मानस में भरके।
निज जय-गौरव के गीत वे हर्ष-सहित हैं गा रहे,
जो गुञ्जित होकर गगन में सभी ओर हैं छा रहे॥

गीत

जग में अब भी गूँज रहे हैं गीत हमारे ;
　　शौर्य्य, वीर्य्य गुण हुए न अब भी हम से न्यारे।
रोम, मिश्र, चीनादि काँपते रहते सारे ;
　　यूनानी तो अभी अभी हम से हैं हारे।
सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय ;
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय॥

"साक्षी है इतिहास, हमीं पहले जागे हैं ;
जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे हैं।
शत्रु हमारे कहाँ नहीं भय से भागे हैं ?
कायरता से कहाँ प्राण हमने त्यागे हैं ?
हैं हमीं प्रकम्पित कर चुके सुरपति तक का भी हृदय ;
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ?

"कहाँ प्रकाशित नहीं रहा है तेज हमारा ?
दलित कर चुके सभी शत्रु हम पैरों द्वारा।
बतलाओ, वह कौन, नहीं जो हमसे हारा ?
पर शरणागत हुआ कहाँ, कब हमें न प्यारा ?
बस, युद्ध मात्र को छोड़कर कहाँ नहीं हैं हम सदय ?
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ?

"कारणवश जब हमें क्रोध कुछ हो आता है,
अवनि और आकाश प्रकम्पित हो जाता है।
यही हाथ वह कठिन कार्य्य कर दिखलाता है—
स्वयं शौर्य्य भी जिसे देख कर सकुचाता है।
हम धीर, वीर, गम्भीर हैं; है हमको कब कौन भय ?
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥

"चन्द्रगुप्त सम्राट हमारे हैं बलधारी,
सिल्यूकस की सर्वशक्ति जिनसे है हारी।
जिनका वीर्य विलोक मुग्ध मन में हो भारी,
पहनाई जय माल जय-श्री ने सुखकारी।
हे हरि ! गुञ्जित हो स्वर्ग तक वह विजय ध्वनि हर्ष-मय ;
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥